ORIGINAL RESEARCH PAPER

Education

KEY WORDS:

मलूकदास के काव्य में सामाजिक जीवन

रामचंद्र एम.ए.हिन्दी, नैट, बी.एड. गांव रोड़ी जिला सिरसा, हरियाणा। पिन 125201

मनुष्य सदैव पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर जीवन यात्रा सम्पन्न करता है। जीवन क्रिया को सुसम्पादित करने हेतु मनुष्य को विविध सम्पर्कों एवं सम्बन्धों की आवश्यकता होती है जिससे वह पूर्णत्व प्राप्त कर सके। इसके लिए मनुष्य को मानव के सहयोग के साथ साथ सामाजिक सहयोग की अपेक्षा होती है।

मलूकदास का युग सामाजिक संगठन की दृष्टि से एक अस्तव्यस्तता, भिन्नता का युग था। उस समय व्यक्तिवाद का प्राबल्य था। जिसकी लाठी उसकी भैंस, कहावत चरितार्थ हो रही थी। समाज विभिन्न प्रकार के अंश–उपांशों में क्षिप्त–विक्षिप्त था। मलूक ने इस सामाजिक वि–शृंखलता के मूल व्यक्ति के सम्मुख, उच्चादर्श उपस्थित किया। समाज की प्रथम इकाई व्यक्ति जब उच्चादर्शवान, चरित्रवान, सर्वगुण सम्पन्न, परोपकारी होगा तो समाज का एक उच्च कोटि का होना स्वाभाविक है।

प्राचीन काल से मनुष्य पारस्परिक सौहार्द्र, मिलजुलकर रहना, पारस्परिक सौजन्यता, पारस्परिक सुख–दुख की समानानुभूति तथा सहाय्य प्राप्ति, पारस्परिक सहानुभूति प्रकटन, मानवी कर्तव्यों का निर्वहन, सामाजिक प्रचलनों का परिपालन आदि कार्य करता चला आ रहा है। इन व्यक्तिगत एवं सामाजिक सहाय्य एवं सहयोगी तत्वों को जिनके द्वारा मानवी जीवन गतिशील होता तथा पूर्णता को प्राप्त करता है समाज की संज्ञा दी जाती है। समाज शास्त्र के प्रकांड विद्वजनों ने समाज की विविध परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। थामस हाब्स के अनुसार मनुष्य का अपने ही अनिरुद्ध स्वभाव के परिणाम से बचने के साधन को 'समाज' कहा जाता है। एडम स्मिथ ने मानव समाज के पारस्परिक सम्बन्धों में बचत के कृत्रिम उपायों का नाम 'समाज' बताया है। मैकआइवर मनुष्यों तथा अन्य सामाजिक प्राणियों द्वारा एक दूसरे के साथ स्थापित किए गए सम्बन्ध, उसके प्रकार तथा अंशों को 'समाज' कहते हैं। गिडिंग्स के अनुसार– 'समाज वह संगठन है जिसमें भाग लेने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ व्यावहारिक सम्बन्धों में बँधे रहते हैं।' जिन्सबर्ग ने कहा है कि, 'समाज व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जो किसी खास सम्बंधों व व्यापारों से सम्बन्ध रखता हो।' राइट के अनुसार, 'समाज का अर्थ केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है, समूह में रहने वाले व्यक्तियों के जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं, उन सम्बन्धों के संगठित रूप को समाज कहते हैं।'

मलूक के अनुसार व्यक्ति को गुणग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए–
प्रेम भगति जाके घट, पूरन ग्यानी सोइ।
कह मलूक जल तरंग ज्यों, कहत सुनत में दोइ।।

मलूक जी भी स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत आचरण का समाज पर प्रभाव होता ही है : समाज को उसके अंगभूत व्यक्ति से अलग नहीं किया जा सकता। अतएव व्यक्ति को सदाचरणशील होना ही चाहिए क्योंकि उसी के आधार पर समाज की उन्नति और विकास सम्भावित है:
प्रेम प्रीति सों आरती, कीजै बारम्बार।
आरती आरतवंत की, सहि नहिं सकत मुरारि।।
मलूकदास के आदर्शवान व्यक्ति को परोपकारी, त्यागवृत्तिवान एवं समाजहितु होना चाहिए मलूक के शब्दों में–
मन ही के संकल्प ते, भयो जो तन अभिमान।
सो छूटै जब कीजिये, ब्रह्म नदी असनान।।

समाज में ऐक्य स्थापित करने वाला और समाज के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाला व्यक्ति ही व्यक्ति है। मलूक के मतानुसार– 'ईश्वर के सामने सब मनुष्य समान हैं। किसी आदमी को इसलिए तिरस्कार से देखना कि वह सहधर्मी नहीं है, ईश्वर और मनुष्य के सामने पाप है यथा–
सब कोउ साहब बन्दते, हिन्दू मुसलमान।
साहब तिनको बन्दते, जिन का ठौर इमान।।

मलूकदास के अनुसार, व्यक्ति निस्पृह, निरहंकार, निस्संग, निर्विषय एवं सन्त समान होना चाहिए। मलूक कहते हैं–
नमो जगतपति जगतगुरु, जगन्नाथ जग राइ।
जग जीवन जग हित करन, जग मनि सो जदु राइ।।

सन्त मलूक के अनुसार सच्चा व्यक्ति समदर्शी, सर्वसमान एवं भग्वद्भक्त है और वह भगवान का दास है। यथा–
हरि के जनम कर्म गुन, गावत होत प्रकास।
संकट निकट न आवई, कहत मलूकादास।।

मलूकदास का व्यक्ति स्वशासित, सत्याचरणशील, सर्वगुण सम्पन्न, प्रत्येक क्षण समाज के हित का चिंतन करने वाला, सुशिष्ठ सन्त समान तथा वैष्णवजन होना चाहिए। ऐसे ही व्यक्तियों द्वारा संगठित समाज एक आदर्श समाज होता है– न कोई छोटा है न बड़ा सबसे बड़ा ईश्वर है–
छोटो बड़ो न घटि बढ़ि, आपुहिं सब प्रकास।
कहै मलूक अनादि हरि, साधन को विश्वास।।

सन्त मलूक समाज की इकाई व्यक्ति को उच्चादर्शवान् संयमी सन्त के स्वरूप में प्रतिपादित करते हैं। यथा–
अभ्यास बिना पावै नहीं, सत चित ब्रह्म बिलास।
ताते ब्रह्म अभ्यास से, ब्रह्म भाउ होइ जाइस।।

व्यक्ति में स्त्रीत्व सम्मिलित है, परंतु लौकिक दृष्टि से स्त्री का स्थान पृथक् ही विचारणीय होता है। समाज संगठन में परिवार संगठन का महान महत्व है। नर–नारी के वैवाहिक जीवन के फलस्वरूप स्त्री–पुरुष का दाम्पत्य जीवन शुरू होता है और दोनों के सम्मिलन से नवीन दृष्टि की रचना, संतान उप संतान के रूप में उपस्थित होती है और संतान, प्रसंतान उप संतान आदि के एकत्रित रूप को परिवार की संज्ञा दी जाती है। परिवारिक जीव की शांति व्यवस्था, सुख समृद्धि और प्रगति नारी के चारित्र्य विकास पर निर्भर है। स्त्री–पुरुष में चारित्र्य की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है, क्योंकि आज भी वह त्याग, मूक तपस्या, नम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की प्रतीक है–
नर देंही दिन दोय की, सुन गुरजन मेरी।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी।।
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई।
कहैं मलूक यह जानि के, मैं प्रीति लगाई।।

मलूक ने भी चरित्र भ्रष्ट नारी की घोर निन्दा की है और उसे महानतम विकार बताया है।
माया काली नागिनी, जिन डसिया सब संसार हो।।
इन्द्र डसा ब्रह्मा, डसिया डसिया नारद ब्यास हो।
गौतम नारि बड़ी पतिबरता, बहुत कीन्हें दाना।
करनी करि बैकुंठ न पैठी, काहे भई पषाना।।
आपा मेटो राम भजो तुम, कहत मलूक दिवाना।।

मलूक में नारी–भावना उच्चादर्श की द्योतक है। त्यागमूर्ति, गृहलक्ष्मी, स्वपति प्रेम में अनन्य रूपा निष्ठावान सती नारी की मलूक ने प्रशंसा की है। उसे अपना सर्वस्व अपने प्रेमाधार पति के समर्पित कर देना चाहिए।
प्रीतम राम सँभारिये, मन बच कर्म बिचारि।
मीत कन्हाई भगत का, भाषत वेद पुकारि।।

अपने पति के प्रति उसे इतनी निष्ठावान एवं श्रद्धायुक्त होना चाहिए कि वह पति और अपने में विभेद न कर सके।
हरि दरसन के चाउ ते, लागी हरि सों प्रीति।
बिसरी कुल मरजाद सब, प्रेम अटपटी रीति।।

विशुद्ध प्रीतिभाव तथा तन्मयता भाव में नर नारी का स्वरूप एक हो जाता है जो सुखद जीवन हेतु आवश्यक है।
महिमा प्रेम भगति की, बरनौं कहा विशेष।
सो हरि देखौं नैन भरि, जाकौ रूप न रेख।।

भारतीय पारिवारिक संगठन में पति–पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र एवं धर्मनिष्ठ माना जाता है। वैवाहिक जीवन का उद्देश्य इस लोक तथा परलोक में दाम्पत्य जीवन को कल्याण कारी बनाना है। यहाँ गृहस्थ जीवन केवल भोग के लिए नहीं होता वरन् धर्म हेतु होता है। मातृत्व कला का यहाँ आदर किया जाता है। जो माँ प्रेम, उदारता, सहनशीलता तथा त्याग भावना के द्वारा संतान का पालन पोषण करके एक उच्च कोटि के नागरिक बनाती है उसका जीवन धन्य माना जाता है। प्रत्येक माता–पिता को अपनी संतान को आदर्शवान, चरित्रवान, परोपकारी, विद्वान, गुणज्ञ बनाना चाहिए। सौजन्यता की मूर्ति, आज्ञाकारी, सहृदय, अपने वरिष्ठों को समादर पूर्वक सम्मान करने वाली, सच्चरित्र संतान ही समाज का उत्कर्षपूर्ण स्वरूप निर्माण करने में समर्थ हो सकती है। वह परिवार अत्यन्त सुखी होता है जिसमें माँ–बाप, भाई–बहिन, छोटे–बड़े, बाल–वृद्ध सब एक–दूसरे के कल्याण हेतु त्याग भाव से सत्कार्यों में संलग्न रहते हैं और उन्नति करते हैं। एक परिवार तथा दूसरे परिवार में परस्पर पड़ोसी का सम्बन्ध होता है। पड़ोसी का कर्तव्य सदैव पड़ोसी की सहायता करना होता है।

मनुष्य एवं स्त्री द्वारा पालित पोषित संतान शिक्षार्जन करने की दृष्टि से विद्यार्थी कहलाती है। मानव समाज में विद्यार्थी जीवन की अपनी महत्ता है। यही विद्यार्थी भावी नागरिक, भावी समाजसेवी एवं भावी देश भक्त बनता है। वह समाज का अत्यावश्यक अंग है, जिसे समाज की आधारशिला कहा जाता है। आधुनिक ढंग की शिक्षा एवं वातावरण के कारण विद्यार्थी समाज का शुद्ध एवं निश्चल स्वरूप धूमिल हो गया है। प्राचीन काल की शिक्षा जीवन शिक्षा थी जिसके द्वारा विद्यार्थी जीवन का सर्वांग विकास होता था। शिक्षा का आदर्श था आध्यात्मिक एवं मानवोचित दिव्य गुणों का विकास करना। गुरु–शिष्य का सम्बन्ध सभी मानवी सम्बन्धों से उच्च, सर्वोत्तम एवं पवित्रतम माना जाता था। महात्मा मलूक का युग भी गुरु–शिष्य के पवित्रम सम्बन्ध पर आधारित था। शिष्य अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा एवं अनन्यनिष्ठा का भाव हृदय में रखता था।

मलूक ने श्रद्धायुक्त वचन उत्तमोत्तम गुणों से विभूषित गुरु के प्रति कहे हैं। पथभ्रष्ट और पाखंडी गुरू की तो वह भर्त्सना ही करते हैं। गुरु सर्वगुण सम्पन्न, सहज शील एवं आध्यात्मिक परिपूर्णता प्राप्त होना चाहिए। ऐसा गुरू मलूकदास की दृष्टि में ब्रह्म समान होता है–
अब मैं सतगुरु पूरा पाया।
मन तैं जनम जनम डहकाया।।
आवागमन मिटाया सतगुरु, पूजी मन की आसा।
जीवन मुक्त किया परमेसुर, कहत मलूकदासा।।

सात्विक गुरु की उपलब्धि के लिए शिष्य को अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाला होना चाहिए–
हमारा सतगुरु बिरले जानै।
सुई के नाके सुमेर चलावै, सो यह रूप बखानै।।
की तो जानै दास कबीरा, की हरिनाकस पूता।
की तो नामदेव और नानक, की गोरख अवधूता।
मलूक के अनुसार शिष्य को गुरू के प्रति श्रद्धावान, निष्ठावान होना चाहिए। गुरु

को अपने शिष्य को आत्मविकास संबंधी ज्ञान से विभूषित करना चाहिए। जिस ज्ञान से आत्मसाक्षात्कार अथवा आत्मविकास नहीं होता वह शिक्षा व्यर्थ ही है–

हमारे गुरु की अद्भुत लीला, ना कछु खाय न पीवै।
ना वह सोवै ना वह जागै, ना वह मरै ना जीवै।।
बिन पायन सब जग फिरि आवै, सो मेरा गुरु भाई।
कहै 'मलूक' ता की बलिहारी, जिन यह जुगत बताई।।

मलूकदास ने गुरु एवं शिष्य दोनों के सर्वोच्च, स्वनियंत्रित, समदर्शी, आत्मदर्शी तथा सर्वकल्याणकारी स्वरूप का प्रतिपादन किया है–

हरि समान दाता काउ नाहीं। सदा बिराजैं संतन माहीं।।
नाम बिसंभर बिस्व जियावै। साँझ बिहान रिजिक पहुँचावैं।।
तीन लोक जाके औसापफ। जन का गुनह करै सब मापफ।।
गरुवा ठाकुर है रघुराई। कहै मलूक क्या करूँ बड़ाई।।

निष्कर्ष:

संत मलूकदास के आदर्श आत्म विकास एवं चरित्र विकास से सहमत हैं। विद्यार्थी, शिक्षक का पवित्रा संबंध है और दोनों ही को परस्पर सदाचरणशील होना विद्यार्थी विद्याध्यान के साथ–साथ रचनात्मक कार्यक्रमों में अपने में चरित्र–विकास करके वे विद्यार्थी–समाज एवं मानव–समाज की अधिक सेवा कर सकते हैं। समाज में ऐसी अनेक रूढ़ियाँ प्रचलित हो जाती हैं जिनके कारण समाज की दशा, स्थिति एवं प्रगति ठप हो जाती है। समाज सेवक अथवा तत्वचिन्तक इन रूढ़ियों का निराकरण करके समाज की अव्यवस्था को सुव्यवस्थित करते रहते हैं। यहाँ पर कतिपय प्रमुख रूढ़ियों के प्रभावादि पर विचार करना आवश्यक है।